COHERENCE – The Multidisciplinary Research Journal
VolumeNo: 16, Issue No: 2, Year: 2025 (July-December)
PP: 189-195
ISSN:0976-5301
Peer Reviewed & Refereed Journal (IF: 7.85)
Journal Website www.coherencejournal.in

महाकवि कालिदास की कृतियों में नारी चित्रण

डॉ ममता पाण्डेय

एसोसिएट प्रोफेसर
संस्कृत विभाग, म. का. सू महाविद्यालय चंदौना, दरभंगा (बिहार)

सारांश

महाकवि कालिदास के साहित्य में नारी केवल रूप-सौंदर्य की विषयवस्तु नहीं, बल्कि प्रेम, तप, स्मृति, प्रकृति, दाम्पत्य, मातृत्व और नैतिक प्रतिरोध की सक्रिय संवाहिका है। प्रस्तुत शोध-पत्र में अभिज्ञानशाकुन्तलम्, कुमारसम्भवम्, रघुवंशम्, मेघदूतम्, ऋतुसंहारम्, मालविकाग्निमित्रम् और विक्रमोर्वशीयम् के आधार पर कालिदास के नारी-चित्रण का पाठालोचनात्मक अध्ययन किया गया है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि शकुन्तला की प्रकृति-संवेदना और आत्मसम्मान, पार्वती का आत्मनिर्णीत तप, इन्दुमती का स्वयंवर, सुदक्षिणा का राजधर्म-सहचर्य, यक्षपत्नी का कलात्मक विरह, मालविका की नृत्यकुशलता तथा उर्वशी की प्रेम-स्वीकृति—इन सबमें नारी की इच्छा और कर्म की विशिष्ट उपस्थिति है। साथ ही, पतिव्रता, गृहिणी और कुलमर्यादा के आदर्श उसके जीवन को सामाजिक अनुशासन से बाँधते भी हैं। अतः कालिदास की नारी-दृष्टि को न तो केवल आदर्शवादी महिमा-मंडन कहा जा सकता है और न केवल पुरुष-दृष्टि का परिणाम। उसमें देह-सौंदर्य और अंतःकरण, परम्परा और स्वत्व, कोमलता और प्रतिरोध, लौकिक प्रेम और आध्यात्मिक शक्ति का जटिल समन्वय है। कालिदास की स्थायी उपलब्धि यह है कि वे नारी को कथा की शोभा भर न बनाकर मानवीय संबंधों की अर्थनिर्मात्री शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित करते हैं।

मुख्य शब्द— कालिदास, नारी-चित्रण, शकुन्तला, पार्वती, इन्दुमती, उर्वशी, नारी-स्वत्व, संस्कृत साहित्य।

प्रस्तावना

संस्कृत साहित्य में कालिदास की कृतियाँ मानवीय संवेदना, प्रकृति और संस्कृति के परस्पर संबंध का सर्वाधिक कलात्मक रूप प्रस्तुत करती हैं। के. कृष्णमूर्ति ने कालिदास को प्रकृति, प्रेम और मानवता का सार्वभौम कवि मानते हुए उनकी काव्य-दृष्टि को भारतीय सांस्कृतिक चेतना का समर्थ रूप कहा है [1]। यह व्यापकता उनके नारी-पात्रों में विशेष रूप से दिखाई देती है। शकुन्तला आश्रम की सरल कन्या होते हुए भी अन्याय के सामने प्रश्न उठाती है; पार्वती अपने उद्देश्य के लिए तप द्वारा स्वयं को रूपान्तरित करती है; इन्दुमती सार्वजनिक सभा में अपना जीवन-सहचर चुनती है; और उर्वशी स्वर्गीय विधान के बीच अपने प्रेम को स्वीकार करती है।

ए. बी. कीथ ने अभिज्ञानशाकुन्तलम् को कालिदास की कला की परिपूर्णता तथा उसके चौथे अंक को कोमल करुणा का आदर्श माना है [2]। बारबरा स्टोलर मिलर द्वारा कालिदास के नाटकों के लिए प्रयुक्त 'स्मृति का रंगमंच' की संकल्पना भी सार्थक है, क्योंकि तीनों नाटकों में नारी की पहचान चित्र, अंगूठी, पत्र, मणि, अभिनय और स्मरण से निर्मित होती है [3]। फिर भी इन पात्रों को केवल सौंदर्य और प्रेम की परिधि में पढ़ना पर्याप्त नहीं है। उनके कथन, निर्णय, श्रम, क्रोध, मौन, सहचर्य और सामाजिक सीमाएँ नारी-अस्तित्व का अधिक जटिल रूप सामने लाती हैं।

अध्ययन का उद्देश्य और पद्धति

इस अध्ययन का उद्देश्य कालिदास की प्रमुख कृतियों में नारी के विविध रूपों का तुलनात्मक विवेचन करना है। पद्धति मूलतः पाठालोचनात्मक और व्याख्यात्मक है। प्रमुख स्त्री-पात्रों के कथन, कथानक में

© Copyright @ Authors

ISSN:0976-5301
Peer Reviewed & Refereed Journal (IF: 7.85)
Journal Website www.coherencejournal.in

उनकी सक्रियता, पुरुष-पात्रों से उनका संबंध, प्रकृति और कला से उनकी संबद्धता तथा सामाजिक मर्यादाओं का विश्लेषण किया गया है। आधुनिक लिंग-संवेदनशील दृष्टि का उपयोग किया गया है, पर प्राचीन काव्य को वर्तमान मानकों पर यांत्रिक ढंग से आरोपित नहीं किया गया। इससे कालिदास के युगीन सांस्कृतिक आदर्श और पात्रों के भीतर उपस्थित वैयक्तिक स्वत्व, दोनों को साथ पढ़ना संभव होता है।

कालिदास की नारी-दृष्टि का आधार

कालिदास के यहाँ नारी-चित्रण के चार प्रमुख आधार हैं—सौंदर्य, प्रकृति, भावबुद्धि और संबंध। बाह्य रूप का वर्णन निस्संदेह विस्तृत है, पर वह प्रायः चरित्र की भीतरी अवस्था से जुड़ा रहता है। प्रसाधनहीन शकुन्तला का वल्कल, तपस्विनी पार्वती का क्षीण शरीर, विरहिणी यक्षपत्नी के अश्रु और इन्दुमती की मृत्यु के बाद निष्प्रयोजन हुए आभूषण—ये देह को वस्तु नहीं, अनुभूति के दृश्य संकेत में बदलते हैं। दूसरी ओर नारी गृहस्थ जीवन की सहचरी, सलाहकार, सखी, शिष्या और वंशधारिणी है। यही बहुस्तरीयता कालिदास को रूढ़ नायिका-भेद से आगे ले जाती है।

फिर भी कवि की दृष्टि अपने समय के कुल, विवाह, पतिव्रत और राजपरिवार-केंद्रित आदर्शों से मुक्त नहीं है। स्त्री का सम्मान प्रायः उसके संबंधों—पुत्री, पत्नी, माता या प्रेयसी—के भीतर व्यक्त होता है। अतः पाठ में जहाँ नारी की सक्रियता है, वहीं उसके लिए निर्धारित मर्यादाओं का दबाव भी है। इसी अंतर्विरोध को स्वीकार करना वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन की पहली शर्त है।

अभिज्ञानशाकुन्तलम् में शकुन्तला: प्रकृति, प्रेम और आत्मसम्मान

शकुन्तला का प्रथम परिचय आश्रम की कर्मशील युवती के रूप में होता है। वह सखियों के साथ वृक्षों को सींचती है, लताओं को बहनों की तरह देखती है और मृगशावक को पुत्रवत् स्नेह देती है। दुष्यन्त की दृष्टि उसके शरीर पर पड़ती है, किन्तु वल्कल-वस्त्र के प्रसंग में सौंदर्य और प्रकृति का ऐसा संबंध बनता है जिसमें कृत्रिम अलंकरण गौण हो जाता है:

सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यं
मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति।
इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी
किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्॥ [4, अंक 1, श्लोक 18]

इस श्लोक में पुरुष-दृष्टि सक्रिय है, पर वर्णन का आशय केवल कामुक आकर्षण नहीं। कमल पर शैवाल और चन्द्रमा पर कलंक की उपमा बताती है कि सहज व्यक्तित्व वस्त्र और आभूषण से बड़ा है। शकुन्तला की पहचान आश्रम-जीवन, श्रम और संवेदना से बनती है। अनसूया और प्रियंवदा के साथ उसके संवाद स्त्री-सख्य की ऐसी सुरक्षित जगह निर्मित करते हैं जहाँ प्रेम की दुविधा, भय और इच्छा व्यक्त हो सकती है। सखियाँ मात्र हास्य-सहायक नहीं; वे उसके अनुभव की साक्षी और रक्षक हैं।

चौथे अंक का विदाई-दृश्य पिता-पुत्री संबंध को अद्वितीय करुणा देता है। कण्व का शोक किसी निर्लिप्त ऋषि का नहीं, उस पिता का है जो पुत्री-वियोग की सार्वभौम पीड़ा पहचानता है:

यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं संस्पृष्टमुत्कण्ठया
कण्ठः स्तम्भितबाष्पवृत्तिकलुषश्चिन्ताजडं दर्शनम्।
वैक्लव्यं मम तावदीदृशमिदं स्नेहादरण्यौकसः
पीड्यन्ते गृहिणः कथं नु तनयाविश्लेषदुःखैर्नवैः॥ [4, अंक 4, श्लोक 6]

© Copyright @ Authors

ISSN:0976-5301
Peer Reviewed & Refereed Journal (IF: 7.85)
Journal Website www.coherencejournal.in

कण्व का निजी दुःख यहाँ सामान्य गृहस्थों की पुत्री-वेदना का मानवीय बोध बन जाता है। आश्रम के वृक्ष वस्त्राभूषण देते हैं, मृगी और लताएँ विदाई में मानो संवेदित होती हैं, और शकुन्तला गर्भवती मृगी के प्रसव का समाचार भेजने को कहती है। इस दृश्य में प्रकृति सजावटी पृष्ठभूमि नहीं; वह स्त्री के भावात्मक समुदाय का हिस्सा है। विवाह के बाद नए घर की ओर जाने वाली पुत्री का विस्थापन केवल सामाजिक संस्कार नहीं, उसके परिचित पर्यावरण और स्त्री-सख्य से अलगाव भी है। इसी प्रसंग में दिया गया गृहिणी-धर्म का उपदेश युगीन सामाजिक संरचना का महत्त्वपूर्ण दस्तावेज है:

शुश्रूषस्व गुरून् कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने
भर्तुर्विप्रकृतापि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः।
भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुत्सेकिनी
यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयो वामाः कुलस्याधयः॥ [4, अंक 4, श्लोक 18]

यह उपदेश सेवा, सहिष्णुता, सौहार्द और विनय को गृहिणी का आदर्श बनाता है, किंतु पति के दुर्व्यवहार पर भी प्रतिरोध न करने की अपेक्षा स्त्री से एकतरफा संयम माँगती है। यही बिंदु आधुनिक पाठक को कालिदास की करुण संवेदना और पितृसत्तात्मक मर्यादा के सह-अस्तित्व पर विचार करने के लिए बाध्य करता है। रोमिला थापर ने महाभारत की अधिक मुखर शकुन्तला और कालिदास की अपेक्षाकृत विनीत शकुन्तला के अंतर को संस्कृति और स्त्री-पहचान के ऐतिहासिक रूपान्तरण से जोड़ा है [5]। किन्तु नाटक की शकुन्तला को पूर्णतः निष्क्रिय मानना भी उचित नहीं होगा। राजसभा में दुष्यन्त जब उसके चरित्र पर संदेह करता है, वह क्रोधपूर्वक कहती है—

अनार्य! आत्मनो हृदयानुमानेन प्रेक्षसे। क इदानीमन्यो धर्मकञ्चुकप्रवेशिनस्तृणच्छन्नकूपोपमस्य तवानुकृतिं प्रतिपत्स्यते? [4, अंक 5]

यह कथन नाटक का नैतिक निर्णायक क्षण है। शकुन्तला राजा को 'अनार्य' कहकर उसके बाह्य धर्मावरण और आंतरिक छल के बीच विरोध उद्घाटित करती है। उसकी गर्भावस्था, परित्याग और अपमान उसे केवल करुणा की पात्र नहीं बनाते; वे उसकी नैतिक वाणी को अधिक प्रखर करते हैं। अंतिम अंक में वह दुष्यन्त को तुरंत भावुक क्षमा नहीं देती, बल्कि अनुभवजन्य दूरी के बाद पुनर्मिलन स्वीकार करती है। इस प्रकार प्रेम के साथ आत्मगौरव उसके चरित्र का मूल तत्व है।

कुमारसम्भवम् में पार्वती: सौंदर्य से साधना तक

कुमारसम्भवम् में पार्वती का चरित्र कालिदास की नारी-दृष्टि का सबसे सक्रिय रूप है। प्रारम्भिक प्रयत्न में उनका सौंदर्य शिव को आकर्षित नहीं कर पाता और कामदेव भस्म हो जाता है। पार्वती तब रूप की निष्फलता को पहचानकर बाहरी आकर्षण के स्थान पर आत्मानुशासन चुनती हैं:

तथा समक्षं दहता मनोभवं पिनाकिना भग्नमनोरथा सती।
निनिन्द रूपं हृदयेन पार्वती प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता॥
इयेष सा कर्तुमवन्ध्यरूपतां समाधिमास्थाय तपोभिरात्मनः।
अवाप्यते वा कथमन्यथा द्वयं तथाविधं प्रेम पतिश्च तादृशः॥ [6, सर्ग 5, श्लोक 1–2]

यहाँ तप किसी पुरुष द्वारा आरोपित परीक्षा नहीं, पार्वती का स्वयं चुना हुआ साधन है। माता मेना उनके कोमल शरीर का विचार कर रोकती हैं, किन्तु स्थिर इच्छा को मोड़ा नहीं जा सकता। पार्वती पिता से वनवास की अनुमति माँगती हैं, राजसी सुख छोड़ती हैं और अपने श्रम से लक्ष्य प्राप्त करती हैं। छद्मवेषी शिव जब स्वयं शिव की निन्दा करता है, पार्वती तर्कपूर्वक उसका प्रतिवाद करती हैं और अंततः वहाँ से

© Copyright @ Authors

ISSN:0976-5301
Peer Reviewed & Refereed Journal (IF: 7.85)
Journal Website www.coherencejournal.in

चले जाने का निर्णय लेती हैं। प्रेम यहाँ विवेकहीन समर्पण नहीं, चुने हुए आदर्श के प्रति बौद्धिक निष्ठा है।

गैरी ए. टब ने पार्वती को 'नायिका के रूप में नायक' मानते हुए दिखाया है कि कुमारसम्भवम् की मुख्य क्रिया का भार पार्वती पर है; उनके आंतरिक रूपान्तरण से ही कथानक का लक्ष्य पूरा होता है [7]। यह निष्कर्ष पाठ से पुष्ट होता है। पार्वती तप की वस्तु नहीं, साधना की कर्त्री हैं। शिव-शक्ति की दार्शनिक एकता इस वैयक्तिक सक्रियता को ब्रह्माण्डीय अर्थ देती है। रति का विलाप और मेना की मातृचिन्ता भी काव्य में स्त्री-अनुभव की दूसरी दिशाएँ खोलते हैं—एक ओर दाम्पत्य-वियोग, दूसरी ओर पुत्री के शरीर और भविष्य के लिए माँ की चिंता।

रघुवंशम् में सहधर्मिणी, स्वयंवरा और मातृत्व

रघुवंशम् का राजवंशीय ढाँचा पुरुष शासकों पर केंद्रित है, फिर भी अनेक निर्णायक प्रसंग स्त्रियों के बिना अर्थहीन हैं। दिलीप की संतानहीनता का समाधान सुदक्षिणा सहित नन्दिनी की सेवा से होता है। सुदक्षिणा अनुष्ठान में मौन परिधीय उपस्थिति नहीं; वह राजधर्म और वंश-उत्तरदायित्व की सहभागिनी है। इन्दुमती का स्वयंवर स्त्री-चयन का सार्वजनिक रूप है। सुनन्दा विविध राजाओं का परिचय देती है, पर अंतिम निर्णय इन्दुमती का है। अज का चयन केवल रूप-मोह नहीं, गुण और अनुरूपता की पहचान है।

इन्दुमती की अकाल मृत्यु पर अज का विलाप कालिदास की दाम्पत्य-दृष्टि का अत्यंत गहरा प्रमाण है:

गृहिणी सचिवः सखी मिथः प्रियशिष्या ललिते कलाविधौ।

करुणाविमुखेन मृत्युना हरता त्वां वद किं न मे हृतम्॥ [8, सर्ग 8, श्लोक 67]

यहाँ पत्नी एक ही समय गृहिणी, सलाहकार, अंतरंग सखी और कलाओं में प्रिय शिष्या है। 'सचिव' शब्द विशेष महत्त्व रखता है, क्योंकि वह दाम्पत्य को केवल सेवा-संबंध नहीं रहने देता; पत्नी की बुद्धि और परामर्श को राजपुरुष के जीवन का अंग बनाता है। इन्दुमती की मृत्यु से अज का 'सब कुछ' छिन जाना स्त्री की घरेलू उपयोगिता नहीं, उसके बहुआयामी व्यक्तित्व की स्वीकृति है। रघुवंशम् की सीता त्याग और लोकापवाद की मार्मिक शिकार है, पर वाल्मीकि आश्रम में मातृत्व और गरिमा के साथ उपस्थित होती है। कालिदास राजधर्म का पक्ष प्रस्तुत करते हुए भी सीता की पीड़ा को दबाते नहीं; इस कारण पाठ राजकीय मर्यादा की मानवीय कीमत दिखाता है।

मेघदूतम् और ऋतुसंहारम्: देह, विरह और अंतर्जगत

मेघदूतम् में यक्षपत्नी प्रत्यक्ष वक्ता नहीं है, फिर भी उत्तरमेघ का भावात्मक केंद्र वही है। यक्ष पहले उसकी देह-छवि अंकित करता है, जिससे पुरुष-दृष्टि का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है; पर अगले ही श्लोकों में वह उसे अपना 'दूसरा जीवन' कहता है और उसके विरह, कला तथा दैनिक क्रियाओं की कल्पना करता है:

तन्वी श्यामा शिखरिदशना पक्वबिम्बाधरोष्ठी

मध्ये क्षामा चकितहरिणीप्रेक्षणा निम्ननाभिः।

श्रोणीभारादलसगमना स्तोकनम्रा स्तनाभ्यां

या तत्र स्याद् युवतिविषये सृष्टिराद्येव धातुः॥

तां जानीयाः परिमितकथां जीवितं मे द्वितीयं

दूरीभूते मयि सहचरे चक्रवाकीमिवैकाम्॥ [9, उत्तरमेघ, श्लोक 79–80]

© Copyright @ Authors

ISSN:0976-5301
Peer Reviewed & Refereed Journal (IF: 7.85)
Journal Website www.coherencejournal.in

वह केवल प्रतीक्षारत सुन्दरी नहीं; वीणा पर स्वयं रचित गीत गाने का प्रयास करती है, सारिका से संवाद करती है, चित्र बनाती है और पुष्पों से बीते दिनों की गणना करती है। इन क्रियाओं में विरह का अंतर्जगत और कलात्मक आत्म-अभिव्यक्ति दोनों हैं। किंतु उसकी वाणी यक्ष की कल्पना से छनकर आती है; इसलिए उसे स्वतंत्र कथावाचक नहीं कहा जा सकता। यह अनुपस्थिति भी कालिदास के नारी-चित्रण की सीमा का संकेत है।

ऋतुसंहारम् में स्त्री-पुरुष प्रेम ऋतुओं के प्रभाव को मानवीय बनाता है। ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त, शिशिर और वसन्त के साथ युवतियों की देह, वस्त्र, प्रसाधन और प्रणय-चेष्टाएँ बदलती हैं [10]। यहाँ नारी प्रायः शृंगारिक दृश्य का अंग है, फिर भी उसकी कामना पूर्णतः निषिद्ध नहीं है; ऋतु का प्रभाव स्त्री और पुरुष दोनों पर पड़ता है। मेघदूतम् की भावगहराई की तुलना में ऋतुसंहारम् में व्यक्तित्व कम और सामूहिक यौवन-छवि अधिक है।

नाटकों की राजकीय स्त्रियाँ: मालविका, धारिणी, उर्वशी और औशीनरी

मालविकाग्निमित्रम् को केवल राजा की प्रेम-विजय की कथा मानने पर नारी-पात्रों की भूमिका संकुचित हो जाती है। मालविका प्रशिक्षित नृत्यांगना है; उसका मंच-प्रदर्शन कथा को आगे बढ़ाता है और कला उसकी पहचान का पहला सार्वजनिक प्रमाण है। बाद में राजकुमारी के रूप में उसकी पहचान विवाह की सामाजिक बाधा दूर करती है, पर यह समाधान वर्ग और कुल की व्यवस्था को भी पुष्ट करता है [11]। धारिणी आरम्भ में मालविका को राजा से दूर रखती है; इसे केवल ईर्ष्या कहना सरल होगा। वह राजमहल की मर्यादा, अपने वैवाहिक अधिकार और सत्ता-संतुलन की रक्षा करती है। अंत में उसका उदार निर्णय कथा के समाधान को वैधता देता है। इरावती का क्रोध भी हास्य का साधन मात्र नहीं; वह बहुपत्नी राजव्यवस्था में आहत अधिकार-बोध की अभिव्यक्ति है। परिव्राजिका कौशिकी की निर्णायक और विवेकपूर्ण उपस्थिति दर्शाती है कि ज्ञान और न्याय-निर्णय में स्त्री को प्रतिष्ठा प्राप्त है।

विक्रमोर्वशीयम् की उर्वशी देवसभा की सिद्ध अभिनेत्री और नर्तकी है। अभिनय के समय 'पुरुषोत्तम' के स्थान पर 'पुरूरवा' कह देना उसके भीतर कला और निजी प्रेम के संघर्ष को उजागर करता है। वह भोजपत्र पर प्रेम-संदेश लिखती है, मिलन की इच्छा स्वीकार करती है और दैवी नियमों से पीड़ित होती है [12]। उसकी सखी चित्रलेखा संवाद और सहायता की महत्त्वपूर्ण कड़ी है। दूसरी ओर रानी औशीनरी का चरित्र उपेक्षित पत्नी की पीड़ा और राजधर्मजन्य संयम को सामने लाता है। वह अंततः प्रियानुप्रसादन-व्रत द्वारा पति के प्रेम को स्वीकृति देती है; इस उदारता में गरिमा है, पर बहुपत्नी व्यवस्था का बोझ भी उसी पर पड़ता है। कालिदास इस पीड़ा को पूर्ण विद्रोह में नहीं बदलते, किंतु उसे दृश्य और वाचिक स्थान अवश्य देते हैं।

स्त्री-सख्य, कला और भावबुद्धि

कालिदास के नारी-पात्रों की शक्ति केवल एकाकी नायिका में नहीं, स्त्रियों के पारस्परिक संबंधों में भी व्यक्त होती है। अनसूया और प्रियंवदा शकुन्तला के प्रेम की गोपनीयता सँभालती हैं, दुर्वासा के शाप का परिहार खोजती हैं और विदाई के समय स्मृति-चिह्न की उपयोगिता समझाती हैं। चित्रलेखा उर्वशी की इच्छा को भाषा देती है; बकुलावलिका मालविका के संकोच और आकांक्षा को समझती है; गौतमी यात्रा में शकुन्तला की संरक्षिका है। ये पात्र कथानक की सूचना देने वाले साधारण उपकरण नहीं, भावबुद्धि और व्यावहारिक विवेक की प्रतिनिधि हैं।

कला भी नारी की सक्रिय पहचान का माध्यम है। मालविका की नृत्यकला राजा के आकर्षण का कारण अवश्य बनती है, पर उसकी शिक्षा, अनुशासन और प्रतिभा को सार्वजनिक मान्यता भी देती है। उर्वशी की अभिनय-कुशलता देवसभा से जुड़ी है, जबकि यक्षपत्नी वीणा, गीत और चित्र के सहारे विरह को रूप देती है। इन्दुमती 'ललिते कलाविधौ प्रियशिष्या' है और पत्नी के साथ कलात्मक सहचर्य की संभावना खोलती है। इस प्रकार कला कभी नारी को देखने का मंच बनती है, कभी उसके अंतःकरण

© Copyright @ Authors

ISSN:0976-5301
Peer Reviewed & Refereed Journal (IF: 7.85)
Journal Website www.coherencejournal.in

को बोलने का साधन। कालिदास की सूक्ष्मता इस द्विविधता को मिटाती नहीं, बल्कि उसे सौंदर्य और अनुभव के तनाव के रूप में सुरक्षित रखती है।

सौंदर्य, स्वत्व और मर्यादा का अंतर्द्वंद्व

कालिदास की उपमाओं ने नारी-सौंदर्य को कमल, चन्द्र, लता, हरिणी, बिम्बफल और ऋतु से जोड़ा है। इससे नारी और प्रकृति के बीच सजीव साम्य बनता है, पर बार-बार देह के खंडों में किया गया वर्णन पुरुष-केंद्रित दृष्टि की सीमा भी प्रकट करता है। कवि की श्रेष्ठता वहाँ है जहाँ दृश्य सौंदर्य चरित्रगत अर्थ ग्रहण करता है—शकुन्तला का वल्कल सहजता का, पार्वती का तपःक्लिष्ट शरीर संकल्प का, यक्षपत्नी की मलिन वेशभूषा विरह का और इन्दुमती के निष्प्रयोजन आभूषण मृत्युजन्य रिक्तता का संकेत बनते हैं।

नारी-स्वत्व की दृष्टि से पात्रों में समानता नहीं है। पार्वती और इन्दुमती स्पष्ट निर्णय लेती हैं; शकुन्तला प्रेम में कोमल और अपमान में प्रखर है; उर्वशी इच्छा व्यक्त करती है, पर दैवी आदेशों से बँधी है; मालविका की कला उज्ज्वल है, किंतु उसका विवाह कुलीन पहचान प्रकट होने पर ही संभव होता है; यक्षपत्नी की अनुभूति गहन है, पर उसकी स्वतंत्र वाणी अनुपस्थित है। इसलिए 'कालिदास की नारी' कोई एक स्थिर प्रतिमा नहीं, बल्कि सामाजिक स्थिति, साहित्यिक विधा और कथानक की माँग के अनुसार बदलता हुआ चरित्र-समूह है।

कालिदास की भाषा-व्यवस्था भी विचारणीय है। नाटकों में उच्च पुरुष पात्र प्रायः संस्कृत और अनेक स्त्रियाँ प्राकृत बोलती हैं। इसे केवल हीनता का चिह्न नहीं कहा जा सकता, क्योंकि प्राकृत संवाद भावात्मक निकटता, सहजता और रंगमंचीय जीवंतता देता है; फिर भी ज्ञान और सार्वजनिक प्राधिकार की भाषा पर सामाजिक विभाजन अंकित रहता है। शकुन्तला का प्रतिरोध चाहे प्राकृत में हो, उसकी नैतिक शक्ति राजकीय संस्कृत से कम नहीं। इस प्रकार भाषा-स्तर भी मर्यादा और स्वत्व के बीच तनाव को दृश्य बनाता है।

निष्कर्ष

महाकवि कालिदास की कृतियों में नारी-चित्रण सौंदर्य और शील के पारम्परिक आदर्श से आरम्भ होकर आत्मनिर्णय, साधना, सहचर्य, कला, मातृत्व, विरह और प्रतिरोध तक विस्तृत होता है। शकुन्तला की नैतिक निर्भीकता, पार्वती की लक्ष्यनिष्ठ साधना, इन्दुमती का चयन-अधिकार, सुदक्षिणा का सहधर्म, यक्षपत्नी का कलात्मक अंतर्जगत, मालविका की नृत्यप्रतिभा और उर्वशी की प्रेम-स्वीकृति नारी को कथानक की सक्रिय शक्ति बनाते हैं। दूसरी ओर पति-केंद्रित मर्यादा, कुलीनता की शर्त, बहुपत्नी व्यवस्था, पुरुष-दृष्टि से देह-वर्णन और स्त्री-वाणी की सीमाएँ युगीन पितृसत्तात्मक संरचना को प्रकट करती हैं।

अतः कालिदास को आधुनिक अर्थ में नारीवादी कहना ऐतिहासिक सरलीकरण होगा, पर उन्हें केवल नारी-सौंदर्य का गायक मानना उससे भी बड़ी भूल है। उनकी नारी करुणा की निष्क्रिय मूर्ति नहीं; वह प्रेम करती है, चुनती है, तप करती है, सलाह देती है, कला रचती है और अवसर आने पर सत्ता से प्रश्न भी करती है। कालिदास की काव्यदृष्टि का स्थायी महत्त्व इसी मानवीय जटिलता में है। उन्होंने स्त्री को प्रकृति की लय, परिवार की चेतना और प्रेम की प्रेरणा के साथ-साथ नैतिक सत्य की वाहिका बनाया। यही कारण है कि उनके नारी-पात्र आज भी नए सांस्कृतिक और आलोचनात्मक पुनर्पाठों को आमंत्रित करते हैं।

© Copyright @ Authors

ISSN:0976-5301
Peer Reviewed & Refereed Journal (IF: 7.85)
Journal Website www.coherencejournal.in

संदर्भ

1. के. कृष्णमूर्ति, कालिदास, नई दिल्ली: साहित्य अकादेमी, पुनर्मुद्रित संस्करण, 1994।
2. ए. बी. कीथ, द संस्कृत ड्रामा: इन इट्स ओरिजिन, डेवलपमेंट, थ्योरी एंड प्रैक्टिस, लंदन: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1924।
3. बारबरा स्टोलर मिलर, संपा., थिएटर ऑफ मेमरी: द प्लेज ऑफ कालिदास, न्यूयॉर्क: कोलंबिया यूनिवर्सिटी प्रेस, 1984।
4. कालिदास, अभिज्ञानशाकुन्तलम्, एम. आर. काले, संपा., दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास, पुनर्मुद्रित संस्करण, 2010।
5. रोमिला थापर, शकुन्तला: टेक्स्ट्स, रीडिंग्स, हिस्ट्रीज, न्यूयॉर्क: कोलंबिया यूनिवर्सिटी प्रेस, 2011।
6. कालिदास, कुमारसम्भवम्, एम. आर. काले, संपा., दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास, 7वाँ संस्करण, 2011।
7. गैरी ए. टब, 'हीरोइन ऐज हीरो: पार्वती इन द कुमारसम्भव एंड द पार्वतीपरिणय,' जर्नल ऑफ द अमेरिकन ओरिएंटल सोसाइटी, खंड 104, अंक 2, पृ. 219–236, 1984।
8. कालिदास, रघुवंशम्, एम. आर. काले, संपा., दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास, 5वाँ संस्करण, 1957।
9. कालिदास, मेघदूतम्, एस. के. डे, संपा., वी. राघवन द्वारा संशोधित 2रा संस्करण, नई दिल्ली: साहित्य अकादेमी, 1970।
10. कालिदास, ऋतुसंहारम्, कालिदासग्रन्थावली, वाराणसी: चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, 1980।
11. कालिदास, मालविकाग्निमित्रम्, सी. आर. देवधर, संपा., दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास, पुनर्मुद्रित संस्करण, 2002।
12. कालिदास, विक्रमोर्वशीयम्, एम. आर. काले, संपा., दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास, 2004।

© Copyright @ Authors